P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आत्महत्या के नैतिक पक्ष की दार्शनिक विवेचना

सारांश

व्यक्ति के ऐच्छिक कर्मो का नैतिक मूल्यांकन करना, मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हम प्रायः दूसरों के कार्यों को उचित–अनुचित अथवा अच्छा–बुरा की श्रेणी में रखकर देखते हैं। यदि कोई कार्य स्पष्ट रूप से अच्छा (सत्य बोलना, ईमानदार होना, मदद करना आदि) अथवा स्पष्ट रूप से बुरा है (चोरी करना, झूठ बोलना आदि) तो उसका नैतिक मूल्यांकन करना कठिन कार्य नहीं है किंतु यह कार्य तब कठिन हो जाता है जब व्यक्ति ने कोई ऐसा कार्य किया हो जो स्पष्ट रूप से न तो अच्छा है, न ही बुरा है। जो प्रत्यक्ष रूप से समाज के लिये न तो हितकर है, न ही अहितकर है। ऐसे कर्मो का यदि बौद्धिक परीक्षण करें तो अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसे ही कर्मों में ''आत्महत्या'' (Suicide) की गणना की जाती है जिसे नैतिक अथवा अनैतिक की श्रेणी में रखना सहज कार्य नहीं है।प्रस्तुत लेख में इसी प्रत्यय के विवेचन का प्रयास किया गया है।

नन्दिनी सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

मुख्य शब्द : आत्महत्या, ऐच्छिक कर्म, मृत्यु, ईमानदार, जीवन, वैज्ञानिक, दार्शनिक वर्ग, सामाजिक प्राणी, लोकतंत्रिक शासन–व्यवस्था, जीने का अधिकार, जीवन का अंत करने का अधिकार, स्व–कारण मृत्य , आत्म बलिदान, दुर्खीम, उदारवादी मत, डेविड हूयूम, अंधविश्वास, अपराध के भाव, ईश्वर, मानसिक अवस्था, कर्तव्य, धार्मिक विश्वास, उत्तरदायित्व, ब्रह्माण्ड, प्राकृतिक नियम, प्लेटो, अरस्तु, संत आगस्टीन, एक्वीनॉस, काण्ट, हेगल, उपयोगितावादी दार्शनिक, मिल, एपिक्यूरस, तथा स्टोइक, नैतिक मूल्यांकन।

प्रस्तावना

''आत्महत्या'' की किसी भी दृष्टि से विवेचना करने से पूर्व जीवन की धारण को समझना आवश्यक है। हम प्रायः ''जीवन'' (Life) को इतना मूल्यवान मानते हैं कि उसका अंत करना हमें उचित नहीं लगता किन्तु यह जीवन बहुमूल्य क्यों है? है भी अथवा नहीं? क्या जीवन का कोई अर्थ है ? अथवा जीवन निरर्थक है?

समस्या एवं अध्ययन का उददेश्य

यह कहना असंगत न होगा कि हमारे ज्ञान की सीमा जहाँ समाप्त होती है, जन्म–मृत्यु के रहस्य का वह आरम्भ बिन्दु है। इस रहस्य का उद्घाटन करने के प्रयास में वैज्ञानिक तथा दार्शनिक वर्ग के लोगों ने न जाने कितने अन्य रहस्यों का उद्घाटन कर लिया है किंतु इस क्षेत्र की गुत्थी को वे सुलझा नहीं पाये हैं। पाश्चात्य कवि ए.आर.बारबल्ड के शब्दों में–

"Life I know not, what thou art,
But know that I and thou must part.
And where and how and why we met,
is to me a secret yet."[1]

कवि ने उपरोक्त पंक्तियों में जीवन के रहस्य तथा उसके आगे मनुष्य की असमर्थता को दर्शाया है। अपने ज्ञान की इस सीमा को ध्यान में रखकर जीवन के मूल्य अथवा अर्थ को समझने का प्रयास करें तो कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन उसके अपने लिये बहुमूल्य है। व्यक्ति जन्म के साथ ही संसार में अनेक संबंधो से जुड़ जाता है। व्यक्ति कभी अपने परिवार के लिये कभी अपनी ही किसी बड़ी महत्वकांक्षा को पूरा करने के लिये, अपने समाज अथवा देश के लिये कुछ उत्तरदायित्वों को निर्धारित कर लेता है। ये उत्तरदायित्व उसे जीने का लक्ष्य अथवा अर्थ देते है। अतः सामान्य परिस्थितियों में एक व्यक्ति भले ही जीवन की कठिनाईयों से जूझता है किंतु वह कभी भी जीवन का अंत करने की बात नहीं सोचता। उसे पता है कि उसका जीवन केवल उसके लिये अपितु बहुत से अपने लोगों के लिये मूल्यवान है।

साहित्यावलोकन

यह लेख डेविड हयूम के प्रसिद्ध लेख Of Suicide पर आधारित है। जो इन्टरनेट पर सर्व सुलभ है। इसके अतिरिक्त Alok Pandey कृत Death Dying And Beyond, William Lillie कृत An Introduction to Ethics, Shyam Rangnathan कृत Ethics: The History of Indian Philosophy एवें Simon Critchley कृत The Ethics of Deconstruction पुस्तकों के सर्वेक्षण को भी मैंने अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

प्रत्यय

यदि हम मान भी ले कि जीवन बहुमूल्य है अतः ऐसे मूल्यवान जीवन का अंत करना उचित नहीं है; तब क्या, व्यक्ति का उसके अपने ही जीवन पर कोई अधिकार नहीं है? क्या अपने ही जीवन पर उसके अधिकारों की कोई सीमा है? यह कहना है कि व्यक्ति का अपने ही जीवन पर कोई अधिकार नही है, गलत है। निश्चित रूप से व्यक्ति का उसके अपने जीवन पर अधिकर है किंतु इस अधिकार पर प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति दूसरों के अधिकारों का उल्लंघनन करके अथवा दूसरों के प्रति अपने दायित्वों को ताक पर रखकर अपने अधिकारों का प्रयोग करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है; वह एक समाज, एक परिवार में रहता है। अतः इन पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्यों के आगे मनुष्य के व्यक्तिगत अधिकार निश्चित रूप से गौड़ हो जाते हैं। समाज और परिवार के प्रति मनुष्य के जो दायित्व हैं वे मनुष्य के व्यक्तिगत अधिकारों पर अंकुश लगाते हैं। जिस प्रकार एक लोकतंत्रिक शासन–व्यवस्था में देश की जनता देश की सरकार पर अप्रत्यक्ष रूप से उसके अधिकारों पर अंकुश रखती है उसी प्रकार सामाजिक मूल्य, परोक्ष रूप से व्यक्ति के अपने ही अधिकारों को नियन्त्रित करते हैं जो कि आवश्यक भी है। अतः जीवन का अंत करने का पक्ष कम से कम इस आधार पर बिल्कुल भी नहीं लिया जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन उसका अपना जीवन है और उसका अंत करने अथवा ना करने के लिये वह पूर्णतः स्वतंत्र है।

वस्तुतः ''जीने का अधिकार'' और ''जीवन का अंत करने का अधिकार'', इन दोनों ही अधिकारों के परस्पर सम्बन्ध की समस्या संविधान (Constitution) के ज्ञाताओं तथा कानून के निर्माताओं के समक्ष भी एक विकट समस्या है। ध्यातव्य है कि संविधान के अनुच्छेद 21 (Article 21) में प्रत्येक व्यक्ति को ''जीवन का अधिकार'' (Right to Life) प्राप्त है।

किंतु 1996 में सुप्रीम कोर्ट के अपने एक निर्णय के अनुसार आत्महत्या के प्रयास को यदि गैर कानूनी न माना जाये तो इससे अनेक समस्यायें व्यवहारिक रूप में सामने आ सकती हैं। यथा–

1. सम्भव है कि वे लोग जो सही अर्थों में घोर शारीरिक अथवा मानसिक त्रासदी से ग्रस्त हैं उनके लिये आत्महत्या एक प्रकार से मुक्ति का उपाय हो किंतु कम आयु अथवा अविकसित बुद्धि के लोगों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा।
2. पुनः परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर, प्रेम प्रसंग में विफल होने पर अथवा नौकरी न मिलने पर यदि लोग आत्महत्या की शरण लेगें तो इससे सम्पूर्ण सामाजिक ढ़ाचा प्रभावित होगा। अतः इन बातों को ध्यान में रखते हुये सुप्रीम कोर्ट ने 1996ई. में आत्महत्या के प्रयास को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया।

दर्शन की दृष्टि से विवेचना करें तो ''आत्महत्या'' का प्रत्यय ही समस्यास्पद है। मृत्यु के किन उदाहरणों को आत्महत्या की संज्ञा दी जा सकती है यह जानना आवश्यक है। पीटर वाई विन्डिट के शब्दों में कहें तो ''आत्महत्या'' की कोई सीमित परिधि नहीं है। (The Concept of Suicide is open textured)। यदि हम उसे शब्दों में परिभाषित करने का प्रयास भी करते हैं तो यह सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिये हम कह सकते हैं कि स्व–कारण मृत्यु (Self-Caused Death) ही आत्महत्या है। किन्तु स्वयं से चुनी गई मुत्यु भी दो प्रकार की हो सकती है–

1. एक जहाँ हमने मृत्यु के अभिप्राय (Intention) से ही मृत्यु का वरण किया है।
2. दूसरा जहाँ हमारे पास मृत्यु के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं है।

हम कह सकते है कि उपरोक्त में प्रथम प्रकार की स्वयं प्रेरित मृत्यु ही आत्महत्या होगी। किंतु मेरे समक्ष ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है जिसम90ं स्वयं प्रेरित मृत्यु के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग शेष नहीं रहता है किंतु मृत्यु का प्रयास करते हुये, अभिप्राय तो मेरा भी स्वयं प्रेरित मृत्यु ही होता है। वस्तुतः आत्महत्या को परिभाषित कर पाना सम्भव नहीं है। आत्महत्या के प्रत्येक उदाहरण में एक सादृश्यता (Criss cross resemblance) होती है किंतु वे उदाहरण एक ही आवश्यक तत्व से निर्मित नहीं होते हैं।

पुनः ''आत्महत्या'' की इसी परिभाषागत कठिनाई के कारण यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण रूप से उत्पन्न होता है कि वह कौन सा विभेदक तत्व है जो ''आत्म बलिदान''(Self Sacrifice) को ''आत्महत्या'' (Suicide) से पृथक करता है। इस प्रश्न को उत्तर में हम कह सकते हैं कि आत्महत्या में हमारा लक्ष्य ''मृत्यु'' होता है जबकि एक सैनिक जब युद्ध क्षेत्र में अपने प्राणों को बलिदान करता है तो रणभूमि में उसका अंतिम ध्येय मृत्यु नहीं होता है। विद्वान समाजशास्त्री दुर्खीम आत्म बलिदान को आत्महत्या का ही एक उदाहरण मानते हैं। दुर्खीम के मत में प्रत्येक वह मृत्यु जिसमें व्यक्ति पहले से जानता था कि उसके अमुक कर्म का परिणाम ''मृत्यु'' भी हो सकता था, आत्महत्या ही है।

अतः यद्यपि एक सिपाही जो शत्रु से लड़ते हुये देश हित में अपने प्राण त्यागता है, वह सीमा पर मरने की इच्छा से नहीं जाता है किंतु कम से कम इस बात का उसे ज्ञान रहता है कि लड़ते हुये उसकी मृत्यु भी हो सकती है। अतः दुर्खीम के लिये ''आत्म बलिदान'' भी आत्महत्या ही है।

इस आधार पर भी हम ''आत्म बलिदान'' को ''आत्महत्या'' से पृथक करते हैं कि ''आत्महत्या'' क्षणिक आवेश में आकर लिया गया निर्णय है न कि सोच समझकर सामान्य मानसिक अवस्था में आकर लिया गया

निर्णय। किंतु युद्ध में भाग लेना भी तो देशभक्ति के आवेश में आकर लिया गया निर्णय है यहाँ भी भावनाओं के आवेश में ही हम निर्णय लेते हैं। इस प्रकार यद्यपि ''आत्महत्या'' को युक्ति–युक्ति शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता है किंतु आत्महत्या क्या है इसका इस एक सामान्य ज्ञान हमें अवश्य है। आत्महत्या से ही जुड़ा हुआ दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न उसके नैतिक औचित्य तथा अनौचित्य का प्रश्न है। इस सम्बन्ध में प्रायः तीन दार्शनिक मत हो सकते हैं

1. प्रथम मत प्लेटो, अरस्तु, संत आगस्टीन, एक्वीनॉस, काण्ट, हेगल आदि का हो सकता है जिनके अनुसार नैतिक दृष्टि से आत्महत्या सदैव अनुचित है।
2. द्वितीय तम उंपयोगितावादी दार्शनिक मिल आदि का हो सकता है जिनके अनुसार आत्महत्या कुछ परिस्थितियों में उचित है कुछ में नहीं।
3. तृतीय मत प्राचीन एपिक्यूरस तथा स्टोइक और हयूम आदि दार्शनिकों का हो सकता है जिनके अनुसार आत्महत्या कोई अनुचित कर्म नहीं है।

उपरोक्त प्रथम दो मतों से हम प्रायः सभी सहमत होते हैं। हम समाज, परिवार, नैतिकता आदि के नाम पर आत्महत्या को एक अनुचित कर्म के रूप में देखते हैं। किंतु तीसरा मत जो कदाचित उदारवादी मत (Literal Vieue) है वह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण और रोचक है कि यह सामान्य धारणा के बिल्कुल विपरीत है। अतः उदारवादी मत किस आधार पर आत्महत्या को नैतिकता की दृष्टि से अनुचित नहीं मानता तथा कहाँ तक यह मत संगत है इसका परीक्षण आवश्यकता है। इस मत का अध्ययन मैनें डेविड हूयूम के ही एक निबन्ध '' OF SUICIDE'' को आधार बनाकर किया है।

हयूम का मानना है कि मनुष्य का सामान्य, प्रतिदिन का जीवन धर्म और अंधविश्वास पर आधारित है। बुद्धि तथा सांसारिक व्यवहारिक ज्ञान होने पर भी व्यक्ति अंधविश्वास के क्षेत्र से बाहर नहीं निकल पाता है। ''आत्महत्या'' के प्रति भी मनुष्य का स्वाभाविक अंधविश्वास है। यद्यपि ''आत्महत्या'' मानव जीवन के समस्त दुखों और पीड़ा से बचने का एकमात्र उपाय है किंतु मनुष्य इस अंधविश्वास से आत्महत्या का आश्रय नहीं लेता है कि यह ईश्वर की इच्छा की अवहेलना होगी।

("The death alone can put a full period to his misery, he dares not fly to this refuge.....")[2]

हयूम के अनुसार जीवन के अनन्त कष्टों से मुक्ति का एक मात्र उपचार आत्महत्या है। अतः इस कर्म से जुड़े अपराध के भाव (Guilt Feeling) से बाहर निकलना किसी भी प्रकार ईश्वर समाज आदि के प्रति हमारे किसी कर्त्तव्य की अवहेलना नहीं है। इसी बात को ह्यम ने निम्न तर्कों के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यथा–

1. इस भौतिक जगत को चलाने के लिये ईश्वर ने ऐसे प्राकृतिक नियम बनाये हैं जो सूक्ष्मतम कण से लेकर विशाल ग्रहों तक का संचालन करते है; तथा पशु जगत के नियमन हेतु ईश्वर ने उन्हें शारीरिक मानसिक, संवेदन, स्मरण, निर्णय सम्बन्धी शक्ति दी है। ऐसी स्थिति में यदि एक व्यक्ति जीवन के कष्टों से जूझते हुये थक चुका है, वह मृत्यु के समस्त भयों से ऊपर उठकर जीवन का अंत कर लेता है तो यह किसी भी प्रकार अपराध अथवा पाप नहीं है। वह जिस बुद्धि द्वारा आत्महत्या का निर्णय लेता है और जिस शक्ति द्वारा स्वयं को समाप्त करता है वह सब ईश्वर द्वारा ही प्राप्त है।
2. पुनः हमें जीवन अत्यधिक मूल्यवान लगता है। अतएव इसे समाप्त करना हम अनुचित मानते हैं किंतु इस विशाल ब्रह्माण्ड में मनुष्य का स्थान अतितुच्छ है। ("But the life of a man is of no greater importance to the universe than that of an oyster.")[3]
अतः जीवन को अनायास ही बहुमूल्य मानकर उसका अंत करने को अनुचित बताना ठीक नहीं है।
3. पुनः यदि जीवन को समाप्त करना ईश्वर के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश करना होता है तो इस जीवन की रक्षा करना भी ईश्वर के कार्य में हस्तक्षेप करना होता क्योंकि तब मानव जीवन का अंत और उसकी सुरक्षा दोनों ही ईश्वर के अधिकार का क्षेत्र होता।
(".....it would the equally adnominal to act for the preservation of life as for its destruction.")[4]
परन्तु हयूम के इस मत के विरूद्ध यह आपत्ति उठाई जा सकती है। कि जब ईश्वर ने एक बार हमें जीवन प्रदान किया तब उसने हमसे यह अपेक्षा की कि जब तक वह स्वयं हमारा जीवन हमसे ने ले ले; तब तक हम उसके द्वारा लिये गये जीवन की सुरक्षा करें। अतः अपने जीवन की रक्षा करना किसी भी प्रकार ईश्वर के कार्य में हस्तक्षेप करना नहीं है।
4. हयूम का अन्य तर्क यह है कि यदि कोई मनुष्य आत्महत्या करता है तो जीवन का अंत करने की शक्ति भी उसे ईश्वर से ही प्राप्त है। अतः इस शक्ति का प्रयोग करना किस प्रकार गलत हो सकता है।
("There is no being which possesses any power or faculty, that it recieves not from its creator.....")[5]
पुनः यह शक्ति इतनी सामर्थ्यवान नहीं है कि वह ईश्वर के द्वारा निर्मित इस लिखित ब्रहमाण्ड को प्रभावित कर सके। मनुष्य अपने किसी भी कार्य से न तो ईश्वरीय अधिकार का हनन कर सकता है न ही उसकी सुव्यवस्थित प्राकृतिक नियमों में बाधा डाल सकता है।
5. हयूम एक अन्य सशक्त तर्क द्वारा मनुष्य के अंधविश्वास को स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार यदि जीवन का अंत करना अपराध है तो जमीन को उपजाऊ बनाना; समुद्र में जहाज चलाना आदि भी अपराध होना चाहिये क्योंकि यहाँ भी मनुष्य अपनी शक्ति को, प्रकृति से कुछ नवीन उद्घटित करने के लिये उस पर आरोपित कर रहा है।
6. हयूम का मानना है कि यदि हम मानते हैं कि ईश्वर ने हमें इस जगत में भेजा है अतः इसे छोड़ कर समय से पूर्व ही चले जाना अनुचित है; हमें ईश्वर का संदेश समझ लेना चाहिये। जब भी हम जीवन में कष्टों से जूझते हैं तब हमें समझ लेना चाहिये कि ईश्वर ने स्वयं ही बहुत स्पष्ट संकेत देकर हमें

बुलाया है। ऐसी स्थिति में ''आत्महत्या'' ईश्वर की आज्ञा का पालन करना होगा।

("".....and whenever pain or sorrow so far overcome my patience, as to make me tired of life, i may conclude that I am recalled from my station in the clearest and most express terms. ")[6]

आत्महत्या के पक्ष में दिये गये उपरोक्त तर्कों के विरूद्ध एक मुख्य आक्षेप यह लगाया जा सकता है कि यहाँ हयूम ने यह पूर्व स्वीकार कर लिया है कि आत्महत्या को अनुचित मानने वाला प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर में भी विश्वास करता है। ऐसे भी लोग होते है जो ईश्वर अथवा किसी धार्मिक विश्वास के आधार पर नहीं अपितु अन्य कारणों से ''आत्महत्या'' को अनुचित मानते हैं। उदाहरणार्थ कुछ लोगों का मानना है कि व्यक्ति का समाज के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व होता है अतः इसे भूल कर अपने ही निज कारणों से जीवन का अंत कर लेना गलत है।

हयूम इस समस्या का समाधान करते हुये कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति जो समय से पूर्व ही अपने जीवन का अंत कर लेता है वह किसी भी प्रकार समाज को क्षति नहीं पहुँचाता है; हाँ यदि वह जीवित रहता तो समाज के लिये कुछ कर सकता था जो अब वह नहीं कर पाता। परन्तु व्यक्ति का समाज के साथ परस्पर (Reciprocal) का सम्बन्ध है। अतः जीवन का अंत करने पर वह न तो समाज से कुछ लेता है और न ही समाज के लिये कुछ करता है। अतः यदि इससे समाज का कुछ अहित हो भी रहा है तब भी उसकी मात्रा बहुत कम है।

("A man who retires from life, does no harm to society he only ceases to do good; which if is an injury is of the lowest kind.")[7]

इस प्रकार हयूम अंततः यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति, वृद्धावस्था, बीमारी और दुर्भाग्य से पीड़ित होकर ही जीवन का अंत करता है। यदि जीवन, जीने योग्य होता तो उसका अंत करना किसी को भी उचित नहीं लगता। ("I believe that no man ever threw away life, while it was worth keeping.")[8]

हयूम की उपरोक्त पंक्ति ऐसे आत्महत्या के उदाहरणों पर विचार नहीं करती जिसमें किसी प्रिय नेता के जेल में (अपराध के दण्ड स्वरूप) बंदी बना लिये जाने पर उसके समर्थकों द्वारा आत्महत्या की जाती है अथवा नौकरी आदि में आरक्षण के नियम के विरूद्ध लोग आत्महत्या आदि करते हैं। इन उदाहरणों में जीवन इतनी भी दयनीय अथवा कष्टदायक अवस्था में नहीं होता कि उसे सदा के लिये समाप्त कर दिया जाये।

शोध–विधि

इस शोध की विधि विवेचनात्मक एवं समीक्षात्मक है। मानविकी के विषयों के अनुरुप समस्या के विवेचनोपरान्त उसका विश्लेषण एवं समीक्षा करते हुये निष्कर्षात्मक टिप्पणी दी गई है।

प्राप्ति

वस्तुतः दार्शनिक के रूप में हयूम समस्या पर सदैव ही एक निष्पक्ष, दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं जो किसी विश्वास अथवा भावना से प्रभवित न हो, हमें व्यवहार से बहुत दूर कर देता है। सम्भवतः हयूम स्वयं इस बात से अवगत है क्योंकि एक स्थल पर वे स्पष्ट शब्दो में कहते हैं–''एक दार्शनिक बनो किंतु अपने सभी दर्शन के बीच में एक मनुष्य ही बने रहों''(Be a philosopher but amidst all your philosophy be still a man.)

किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि आत्महत्या सम्बन्धी हयूम का सम्पूर्ण मत अप्रासंगिक तथा अनुचित है। कम से कम हयूम का मत हमें ''आत्महत्या'' सम्बन्धी अंधविश्वास से अवश्य मुक्त कर देता है।

पुनः ''आत्महत्या'' के सम्बन्ध में, 'यह नैतिक दृष्टिकोण से अनुचित है' ऐसा मत भी स्वीकार्य नहीं है। प्रायः कान्ट आदि दार्शनिक, आत्महत्या को कर्त्तव्य की अवहेलना और मानवता के अपमान के रूप में देखते हैं। कान्ट के ही शब्दो में

"He who so behaves.....makes a thing of himself, becomes for everyone an object of freewill. We are free to treat him as a beast, as a thing."[9]

निष्कर्ष

यह दृष्टिकोण मानव जीवन के भावनात्मक पक्ष की अवहेलना करता है। मनुष्य मात्र बौद्धिक विचारों से ही नहीं अपितु संवेदनशीलता और भावनाओं से भी प्रभावित होता है और किसी घोर मानसिक अस्वस्थता की दशा में वह ''आत्महत्या'' का विचार कर सकता है। अत: ऐसी संवेदनशील मानसिक अवस्था में व्यक्ति उपचार का पात्र है ना कि आलोचना का।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *Alok Pandey , Death Dying And Beyond,Sri Aurobindo Society Pondicherry,2009*
2. *William Lillie , An Introduction to Ethics,Allied Publishers Private Limited, New Delhi,2003*
3. *Shyam Rangnathan, Ethics: The History of Indian Philosophy, Moti Lal Banarsidas, New Delhi,2007*
4. *Simon Critchley, The Ethics of Deconstruction,Moti Lal Banarsidas, New Delhi,2007*

पाद टिप्पणी

1. *https://www.poetryfoundation.org/poems/50602/life-56d22dcfeee28*
2. *https://ebooks.adelaide.edu.au/h/hume/david/suicide/*
3. *https://ebooks.adelaide.edu.au/h/hume/david/suicide/*
4. *https://ebooks.adelaide.edu.au/h/hume/david/suicide/*
5. *https://ebooks.adelaide.edu.au/h/hume/david/suicide/*
6. *https://ebooks.adelaide.edu.au/h/hume/david/suicide/*
7. *https://ebooks.adelaide.edu.au/h/hume/david/suicide/*
8. *https://ebooks.adelaide.edu.au/h/hume/david/suicide/*
9. *https://philosophynow.org/issues/61/Kant_On_Suicide*